द्वितीय अध्याय

आलोच्य नाटकों के विषयवस्तु का अनुशीलन

द्वितीय अध्याय

आलोच्य नाटकों के विषयवस्तु का अनुशीलन

2.1 नाटक का स्वरूप :-

भारतीय साहित्य में नाट्य परम्परा बहुत की प्राचीन रही है। नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में विभिन्न मत-मतान्तर है। ''डॉ. रिजवे नाटक की उत्पत्ति के संदर्भ में नाटक के मूल में मृतक वीरों की पूजा को ही प्रधान मानते हैं। उनके अनुसार प्राचीन काल में महान मृतात्माओं के महत्त्व तथा उनके प्रति अपना आदरभाव प्रकट करने के लिए नाटक अभिनीत किये जाते थे।''[1] यह कथन आंशिक रूप में सत्य है। यदि इसे पूर्ण रूप से सत्य मान लिया जाय तो नाटक की सीमा को बहुत की संकुचित कर देना पड़ेगा। डॉ.पिसळे कठपुतलियों के नाच से नाटकों की उत्पत्ति मानते हैं। प्राचीन नाटकों में 'सूत्रधार स्थापक' आदि शब्दों का प्रयोग होने के कारण इस बात की पुष्टि होती है। कठपुतलियों का खेल भी तो एक प्रकार से नाटक ही होता है। उसमें पात्रों का स्थान केवल कठपुतलियाँ ले लेती है।

भारतीय विद्वान नाटक की उत्पत्ति वेदों से मानते हैं। वेदों से आये कुछ संवादों को नाटक का मूल रूप माना जा सकता है। 'वाल्मिकी रामायण', 'हरिवंश पुराण' आदि ग्रंथों में भी नाटकों का उल्लेख मिलता हैं। इससे यह सिध्द होता है कि हमारा नाट्य साहित्य अत्यंत प्राचीन है।

नाट्याचार्य भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में सर्वप्रथम नाटक के शिल्प का सूक्ष्म विवेचन किया है। उनके अनुसार,"अनुभव और विभाव संयुक्त रचना काव्य गीतादि से रंजित होकर नटों व्दारा जब उसका प्रदर्शन होता हैं। तो उसे नाटक कहते हैं।''[2]

2.2 कथावस्तु का स्वरुप :-

मानव की हृदयगत अभिव्यक्ति के सशक्त और प्रभावपूर्ण साहित्यांगों में नाटक मूर्धन्य स्थान का अधिकारी है। हमारे आचार्यों के कथन के अनुसार - 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' अर्थात काव्यों में नाटक ही सबसे सुन्दर हैं, इस विधान में भी यही प्रतिध्वनि निकलती है। समस्त साहित्योंगो में केवल नाटक ही कला और साहित्य के अंतर्गत आनेवाले सभी रूपों, नृत्य, संगीत, त्रित्र, स्थापत्य, मूर्ति, कविता, उपन्यास, कहानी एवं गद्य गीत प्रभृति का सारसंगम रूप है। इसलिए सभी प्रकार के साहित्य की अपेक्षा नाटक साहित्य अपना एक अलग अस्तित्व रखता है।

नाटक की मूल कथा एवं मूल कथा से संबंध रखनेवाली समस्त घटनाओं को कथावस्तु कहते हैं। कथानक नाटक का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है क्योंकि जिस प्रकार आधार के बिना एक स्तंभ भी खड़ा नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार नाटक की रचना के लिए भी थोड़ा अधिक कथा का आधार नितांत आवश्यक है।''

वस्तु के आधार -

कथावस्तु के स्रोत या आधार के विचार से तीन भेद किये जाते हैं -

1) प्रख्यात

2) उत्पाद्य

3) मिश्र

1) प्रख्यात -

जिस कथावस्तु का आधार इतिहास पुराण या परंपरा से चली आती जनश्रुति होती है उसे प्रख्यात कथावस्तु कहते हैं।

2) उत्पाद्य -

जो कथावस्तु नाटककार की कल्पना की उपज होती है, उसे उत्पाद्य वस्तु कहते हैं इसे कल्पित कथावस्तु भी कहते हैं।

3) मिश्र -

मिश्र कथावस्तु में इतिहास और कल्पना दोनों प्रकार की कथावस्तु का संमिश्रण होता है।

अरस्तू ने भी कथावस्तु के तीन आधार बताए है -

1) दंतकथा-मूलक

2) कल्पना-मूलक

3) इतिहास-मूलक

1) दंतकथा-मूलक -

दंतकथा-मूलक इसलिए आधार बनाया गया कि जो सम्भव है वही विश्वसनीय भी है और जो हुआ नहीं उसकी संभाव्यता में हम एकदम विश्वास नहीं कर पाते।

2) कल्पना-मूलक -

कल्पना मूलक में जैसे तैसे परम्परागत दंतकथाओं को ग्रहण करना आवश्यक नहीं है। घटनाएँ और नाम सभी काल्पनिक रख सकते हैं।

3) इतिहास-मूलक -

यदि संयोग से ऐतिहासिक विषय भी ग्रहण करें तब भी उसका कवि रूप अक्षुण रहता है क्योंकि ऐसा कोई कारण नहीं है कि कुछ घटनाएँ जो वास्तव में घटी है वह संभव और संभाव्य के अनुकूल नहीं।

वस्तु के प्रकार -

कथावस्तु दो प्रकार की होती है -

1) अधिकारिक कथावस्तु

2) प्रासंगिक कथावस्तु ।

अधिकारिक कथावस्तु का संबंध नाटक के नायक के साथ होता है। इसका संबंध फलप्राप्ति के कार्य से है। जैसे रामायण में राम की कथा।

गौण कथा को प्रासंगिक कथा कहते हैं। यह मुख्य कथा की सहायिका और पोषिका होती है। प्रासंगिक कथा के दो भेद होते हैं - पताका और प्रकरी। मुख्य कथा के साथ दूर तक चलनेवाली कथा पताका कहलाती है और मुख्य कथा के बहुत कम अंश में व्याप्त रहनेवाली कथाएँ प्रकरी कहलाती है।

कथावस्तु के रूप -

नाटक में समस्त कथानक को रंगमंच पर नहीं दिखाया जा सकता । अभिनय की दृष्टि से कथावस्तु के दो रूप होते हैं -

1) वाच्य

2) सूच्य

रसहीन एवं रंगमंच के अयोग्य वस्तुओं की केवल सूचना दी जाती है। उनका अभिनय नहीं होता। मृत्यू, राष्ट्र-विप्लव, स्नान, भोजन आदि सूच्य विषय हैं।

सूच्य कथावस्तु के साधनों को 'अर्थोपक्षेपक' कहते हैं। ये पाँच माने गए हैं -

1) विष्कंभक -

इसके द्वारा अंक के आरंभ में कथानक की सूचना दी जाती है।

2) प्रवेशक -

इसका प्रयोग दो अंक के बीच में होता है। इसके द्वारा भूत और भावी कथाओं की सूचना मिलती है।

3) चूलिका -

जहाँ नेपथ्य के पीछे से उत्तम, मध्यम या अधम श्रेणी के पात्रों द्वारा सूचना दी जाती है वहाँ चूलिका होती हैं।

4) अंकावतार -

जहाँ बिना पात्रों के बदले हुये ही पहले अंक में काम करनेवाले पात्र बाहर जाकर फिर रंगमंच पर आ जाते हैं और आगेवाले अंक की सूचना देते हैं। वहाँ अंकावतार होता है।

5) अंकमुख या अंकास्य -

जहाँ किसी अंक के अभिनय की समाप्ति कर आगे आनेवाली अंक की कथा की सूचना दी जाती है। वहाँ पर अंकमुख या अंकास्य होता है।

नाटक की प्रधान कथावस्तु अनिवार्य रूप से किसी-न-किसी प्रयोजन, लक्ष्य व उद्देश्य को लेकर चलती है। आचार्यों ने नाटक के इस प्रयोजन व लक्ष्य की गतिविधि एवं निर्माण के सूचक पाँच चमत्कार युक्त अंश यहाँ बताए हैं, जिन्हें हम अर्थ प्रकृतियाँ कहते हैं। वे निम्नलिखित है -

1) बीज -

मुख्य फल के हेतू वह कथाभाग जो आरंभ में अत्यंत स्वल्प मात्रा में होता है परन्तु क्रमश: विस्तृत होता है 'बीज' कहलाता है।

2) **बिन्दु -**

प्रधान कथा का बीज के द्‌वारा सूत्रपात हो जाने पर जो भाग कथा को आगे बढ़ाता है वह 'बिन्दु' कहलाता है।

3) **पताका -**

मुख्य कथा के साथ दूर तक चलनेवाली प्रासंगिक कथा 'पताका' कहलाती है।

4) **प्रकरी -**

मुख्य कथा के बहुत कम अंश में व्याप्त रहनेवाली कथाएँ 'प्रकरी' कहलाती है।

5) **कार्य -**

जिसकी सिद्‌धि के लिए समस्त प्रयास होते रहे हैं और जो कथावस्तु में अभीष्ट है वही 'कार्य' है।

नाट्यशास्त्र की भाषा में इतिवृत्त के फल को कार्य कहते हैं और इस कार्य का फैलाव संपूर्ण रचना में होता है। यह कार्य पाँच अवस्था में प्रकट होता है जिन्हें कार्यावस्थाएँ कहते हैं-

1) **आरंभ -**

फलप्राप्ति के लिए जहाँ उत्सुकता प्रकट की जाती है उसे 'आरंभ' कहते है।

2) **प्रयत्न -**

फलप्राप्ति के लिए शीघ्रतापूर्वक उद्‌योग किया जाता है वह 'प्रयत्न है।

3) **प्राप्त्याशा -**

जहाँ आशंका और बाधाओं के साथ-साथ किंचित फलप्राप्ति की आशा होती है वह 'प्राप्त्याशा' है।

4) नियताप्ति -

इसमें रूकावटों के दूर होने पर 'फल की प्राप्ति' का निश्चय होता है।

5) फलागम -

जिसमें उद्देश की पूर्ति हो जाती है और सभी अभिलाषित फल प्राप्त हो जाते है वह 'फलागम' की अवस्था है।

अर्थ प्रकृतियों और फलागम को जोड़ने के लिए संधियों का उपयोग किया जाता है। आचार्यों ने इन पाँच संधियों को 'शरीर' के पाँच भाग माने हैं। दशरुपककार ने संधि शब्द का अर्थ 'संधान करना' किया है।

संधियों के पाँच भेद है -

1) मुख -

जहाँ प्रारंभ नामक अवस्था के साथ संयोग होने से अनेक अर्थों एवं रसों के व्यंजक बीज की उत्पत्ति हो वह मुख 'संधि' है।

2) प्रतिमुख -

इसमें मुख संधि में प्रकट हुआ बीज कुछ लक्ष्य और अलक्ष्य रूप में विकसित होता हुआ जान पड़ता है वहाँ 'प्रयत्न' नामक अवस्था के साथ 'बिन्दु' नामक अर्थ प्रकृति कार्य व्यापार को अग्रेसर करती है।

3) गर्भ -

इसमें प्रतिमुख संधि में कुछ प्रकाशित बीज का बार-बार अविर्भाव, तिरोभाव तथा अन्वेषण होता रहता है।

4) विमर्श -

इसमें हृदय मंथन संघर्ष और विमर्श की दशाएं उपस्थित होती हैं अत: इसका नाम विमर्श है।

5) निर्वहण संधि -

इसमें चारों संधियों के वर्णित अर्थों का समाहार हो जाता है और मुख्य फल की प्राप्ति भी हो जाती है।

इस प्रकार कार्यव्यापार की दृष्टि से कथानक की पाँच अवस्थाएँ, पाँच प्रकृतियाँ और इनके योग से बनी पाँच संधियाँ होती है।

2.3 कथानक की विशेषताएँ :-

इन बातों का ध्यान रखते हुए उत्कृष्ट कथानक के लिए निम्नलिखित विशेषताएँ आवश्यक समझी जाती है -

1) मौलिकता -

जिस कथानक में पाठक परिणाम तथा आगामी घटना का आभास न पा सकते उस कथानक को मौलिक कहा जाता है।

2) प्रबंध कौशल -

कथानक की मुख्य और गौण कथाओं को औचित्य और प्रभाव के साथ संगठित करने की चतुराई प्रबंध कौशल है।

3) संभवता -

नाटक में जो कुछ भी वर्णन है वह संभव लगे, असंभव नहीं।

4) सुगठन -

प्रबंध कौशल के साथ समस्त नाटक एक सुगठित रचना होनी चाहिए।

5) रोचकता -

कथानक की रोचकता उपर्युक्त बातों का ध्यान रखने से आ जाती है।

2.4 'सिन्दूर की होली' नाटक की कथावस्तु :-

प्रथम अंक -

नाटक के कथानक की प्रथम अंक की शुरूआत डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल के बंगले से होती है। माहिरअली उनका पुराना मुंशी है, जो उनके यहाँ अपने मालिक के लिए बड़े-बड़े लोगों को फँसाना और उनसे अधिकतम रकम वसूल करने का कार्य किया करता है। नाटक का आरंभ एक ऐसी घटना से लेकर होता है जिससे पता चलता है कि मुरालीलाल के मित्र का बेटा मनोज विलायत जाने का खर्चा किसी आम आसामी से प्राप्त करने की सोच में है। इसमें बात तो यह है कि भगवन्तसिंह और उसके भतीजे रजनीकान्त में पारिवारिक सम्पत्ति को लेकर संघर्ष चल रहा है। स्थिति यहाँ तक बिगड़ जाती है कि भगवन्त सगे भतीजे की हत्या कर उसकी जायदात हड़प लेना चाहते है। लेकिन मुरारीलाल का मुंशी उन्हें कहता है कि - वह सतरह-अठारह वर्ष का लड़का है, जिसके पिता को मरे अभी साल भर भी नहीं हुआ है। उसकी गरीब और निसहाय अवस्था को देखकर भगवन्तसिंह उसकी सम्पत्ति ही हड़प नहीं करना चाहता बल्कि हत्या करवाना चाहता है। माहिरअली उन्हें बहुत समझाता है लेकिन मुरारीलाल पर उसका कोई असर नहीं पड़ता। इस प्रकार कथावस्तु का आरंभ पट्टीदारों के कलह की समस्या से लेकर होता है, जिसमें रजनीकान्त के सम्बन्ध में किसी षड़यंत्र और समस्त कथावस्तु में उसके विशेष स्थान का परिचय प्राप्त होता है। बाद में हमें इस बात का पता चलता है कि मनोज के पिताजी ने मुरारीलाल के कारण आत्महत्या

की थी। उन्हें मरे दस साल हो गये है। तब से मुरारीलाल प्रायश्चित के रूप में मनोज को विलायत भेजकर पढ़ना चाहते हैं और मनोज के लिए बड़े से बड़ा आत्मोत्सर्ग करना चाहते हैं।

इसके बाद चंद्रकला जो मुरारीलाल की लड़की है, मुरारीलाल के साथ उसकी बातों से पता चलता है कि मनोज लखनऊ में बीमार है। मनोज बीमार होने के कारण मुरारीलाल चिंतित हो जाते है। चंद्रकला अपने पिताजी से चिंता का कारण पूछती है तो वे कहते है कि मेरे मित्र का लड़का है और मरते वक्त उन्होंने गोद में ड़ाल दिया था इसलिए मैं चिंतित हूँ। इसके उपरांत भगवन्तसिंह और हननन्दनसिंह दस हजार रूपये रिश्वत माहिरअली के माध्यम से उनके पास पहुँचाते है और माहिरअली को भी पाँच सौ रूपये देते हैं। भगवन्तसिंह और हरनन्दनसिंह की बातों से यह भी पता चलता है कि भगवन्तसिंह बहुत बड़ा जमींनदार है और वह हाकिमों के लिए बहुत पैसा खर्च करता है। बाद में जब मुरारीलाल बाहर आते है तब भगवन्तसिंह उनके सामने रजनीकान्त के बारे में शिकायत करते हैं। तब मुरारीलाल उन्हें समझाता है कि उसे (रजनीकान्त को) समझाओ, तुम लोग उसे क्यों नहीं समझाते ? तब हरनन्दनसिंह कहता है कि समझाने की बहुत कोशिश की है लेकिन वह नहीं मान रहा है। फिर भी मुरारीलाल उन्हें समझाने की कोशिश करने के लिए कहते हैं लेकिन वह फिर से रजनीकान्त के बारे में शिकायत करते रहते है। तब भगवन्तसिंह कहते है कि वह तो अब तक मर चुका होगा। तब मुरारीलाल उन्हें रजनीकान्त का जीवन सुरक्षित रहने के लिए चेतावनी देता है। बाद में थोड़ा-सा सोचकर फिर से चालीस हजार रूपये की माँग करता है। उन्हें रजनीकान्त के जीवन की सुरक्षा की चिंता है। फिर भी स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण भगवन्तसिंह से पैसों की माँग करता है। इस घटना से माहिर बहुत दुखी होता है।

इसके बाद मुरारीलाल और माहिरअली की बातों से पता चलता है कि रजनीकान्त का व्यक्तित्व आकर्षक है। यह अत्यंत दु:ख की बात है कि उसका जीवन अंधेरे की गहन छाया से भरा हुआ है। माहिरअली की दृष्टि में इस रहस्यपूर्ण हत्या की पूरी जिम्मेदारी मुरारीबाबू पर है

अन्यथा कानून के ड़र से भगवन्त इतना साहस कभी नहीं करता। मुरारीलाल यह बात स्पष्ट करते है कि रजनीकान्त की मृत्यू उनकी वजह से नहीं हुई है। वे मानते हैं कि "संसार में भलाई-बुराई का भाव नहीं है। आज इसने दस हजार दिया है। दस-दस रूपया देकर यह गवाहों को बिगाड़ देता। एक हजार भी नहीं खर्च होता और वह छूट जाता। आजकल का कानून ऐसा ही है इसमें सजा उसको नहीं दी जाती जो कि अपराध करता है .... सजा तो केवल उसको होती है जो अपराध छिपाना नहीं जानता। बस ..... यही कानून है।"[3] ऐसी हालत में मैंने पैसे लेकर कोई बुराई नहीं की। चंद्रकला उसके सौंदर्य और हास्य को देखकर प्रथम दर्शन में ही रजनीकान्त पर आसक्त हो जाती है। रजनीकान्त के प्रति उन्हें सहानुभूति है। इसी समय बालविधवा मनोरमा प्रवेश करती है। जिसके हाथों में रजनीकान्त का चित्र है, जिसका निर्माण उन्होंने स्वयं किया है। उस चित्र के माध्यम से ही रजनीकान्त के बारे में चन्द्रकला और मनोरमा का वार्तालाप होता है। मनोरमा की शादी आठ वर्ष की अवस्था में हुई और दो साल के बाद ही वह विधवा हो गयी है। लेकिन उसे विधवा होने का दुख नहीं है। वह कहती है कि - 'जिस वस्तु का अनुभव हुआ ही नहीं उस अभाव का दुख क्या ?"4 मनोरमा को कला की उपासना में गहरा विश्वास है। मनोरमा ने रजनीकान्त के सौम्य और आकर्षक रूप से प्रभावित होकर एक चित्र तैयार किया है। चित्र का नाम है "यौवन के व्दार पर" यह चित्र देखकर चंद्रकला प्रफुल्लित हो जाती है। उसने जीवन में जिस दिव्य दर्शन की कल्पना की है, वह यही तो है। जिस दिन रजनीकान्त को देखा है, उसी समय से अन्तर्जगत में एक अद्भूत तुफान उठ गया है, न शान्त होता है, न कोई समाधान दिखता है। मनोरमा के मत से रजनीकान्त का चित्र उसकी पत्नी के पास भेज देना चाहिए। उसके विचार से चन्द्रकला का यह मत अयथार्थ है कि अशिक्षित में कला की भावना नहीं होती। शिक्षा और कला का कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि कला विश्वास और शिक्षा संदेह की वृत्तियों पर आधारित होती है। किसी भी चित्र का आधार साकार ही हो सकता है क्योंकि निराकार कला क्षेत्र की वस्तु नहीं है। चन्द्रकला उस चित्र को अपने पास रख लेना चाहती है। वह उसका संम्मोहन नहीं छोड़ सकती । चन्द्रकला के

हृदय में रजनीकान्त की स्मृति इस प्रकार व्याप्त हो उठी है जो उसके जीवन को एकमात्र आधार बनकर नाटक की भावी घटनाओं का संकेत देती है। मनोरमा और चन्द्रकला के मध्य हुए व्यापक विचारों से चन्द्रकला के हृदय में व्याप्त रजनीकान्त के प्रति अव्यक्त प्रेम भावना का आभास मिलता है। यह भी विदित होता है कि चन्द्रकला और मनोज के सम्बन्धों में मुरारीलाल किसी विशेष सम्बन्ध की आशा रखता है किन्तु चन्द्रकला उसकी ओर आकर्षित नहीं है। इसी बीच मनोजशंकर भी प्रवेश करता है। वह मनोरमा के हाथ से लेकर रजनीकान्त के चित्र को देखने के लिए लेता है। उसे यह विदित होता है कि इस चित्र का आधार कोई साकार व्यक्ति है। मनोजशंकर परीक्षा छोड़कर चला आता है क्योंकि उसे इस बात में अनौचित्य अनुभव होता है कि मुरारीलाल ने अपना समस्त वेतन उसके लिए भेज दिया है। इसका तात्पर्य यह है कि मुरारीलाल के नैतिक पतन की तीव्रतम संभावना है। मनोजशंकर के मानसिक रोग का कारण मनोजशंकर के पिता को स्वप्न में देखना है। मनोजशंकर यह स्पष्ट करता है कि उसकी अन्तरात्मा की दारूण व्यथा तब तक समाप्त नहीं हो सकती, जब तक उसे विदित न हो कि उसके पिता ने किन कारणों से बाध्य होकर आत्महत्या की। इसी मध्य रजनीकान्त को लिये कुछ आदमी प्रवेश करते हैं। रजनीकान्त का सिर फट गया है। वह चन्द्रकला की ओर देखता है। इसके साथ ही नाटक का प्रथम अंक समाप्त होता है।

व्दितीय अंक :-

दूसरे अंक के कथानक की शुरूआत मनोज और मनोरमा के वार्तालाप से होती है। दोनों एक दूसरे को चाहते हैं। एक जगह मनोरमा कहती हैं कि - ''मैं तुम्हें चाहती हूँ ..... तुम्हारे साथ एक प्रकार की आत्मीयता का अनुभव मैं करती हूँ ..... लेकिन तुम जिस मोह में पड़ गये हो .... वही तो भयंकर है।''[5] मनोरमा मनोज को बहुत चाहती है, जिसके कारण वह बीमार हो गयी है। मनोरमा के कथन के अनुसार डिप्टी साहब भी उसे प्यार करते हैं। डॉ.कर्णसिंह भाटीजी मनोरमा के बारे में लिखते हैं कि, ''समस्त पुरूष जाति उसे भिक्षुकों की तरह प्रतीत होती है, जो

नारी के वासना के लिए अंतर की विवशता में अस्तित्व रखते है।''[8] मनोरमा विधवा है। लेकिन उनके सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि, ''मैं किसका स्वीकार करूँ ? मनोज या ड़िप्टी साहब का ?''[7] आगे वह कहती है कि, 'मैं तो उन्हें जी भर घृणा करती हूँ और तुम्हें जी भर प्रेम...।''[8] आगे फिर से वह मनोज को कहती है कि ''तुम्हें अपना दूल्हा तो नहीं बना सकती, लेकिन प्रेमी बना लूँगी।''[9] यह सब मनोरमा के खुलेपन और निर्भय व्यक्तित्व का ही सूचक है। मनोरमा मनोज को बताती है कि मुरारीलाल तो चंद्रकला की शादी तुमसे करना चाहते हैं। फिर भी चंद्रकला रजनीकान्त की सुन्दरता और सरलता पर आकर्षित हो गयी। मनोरमा विधवा विवाह को समाज का सबसे बड़ा दूषण समझती है, जिससे वैधव्य कभी मिट नहीं सकता, उल्टे तलाक आदि की नयी समस्याएँ उत्पन्न होगी। इसके बाद मनोरमा स्पष्ट कहती है कि चंद्रकला इस बात से अभिज्ञ है कि रजनीकान्त विवाहित है। फिर भी चंद्रकला ने अपनी रोमानी भावना में खुद के व्यक्तित्व को डूबो दिया है। ऐसी स्थिति में चंद्रकला का विवाह व्यभिचार होगा, मानसिक व्यभिचार शारीरिक व्यभिचार से भयंकर होगा। मनोरमा के शब्दों में मिश्रजी लिखते है - ''पुरूष का सबसे बड़ा रोग स्त्री है और स्त्री का सबसे बड़ा रोग है पुरूष। यह रोग तो मनुष्यता का है और शायद मनुष्यता के विकास के साथ-ही-साथ इसका भी विकास हुआ।''[10] मनोरमा के हृदय में मनोज के प्रति आत्मीयता है। वह कहती है कि - ''मैं तो तुम्हारा हाथ पकड़कर संसार में उतर पड़ना चाहती हूँ। संसार के लिए एक नया आदर्श पैदा करना चाहती हूँ और तुम चाहते हो कि मैं अपने आँचल से तुम्हारा गला बांध दूँ और अपने साथ तुम्हें भी ले डूबूँ। अगर तुम सचमुच मेरे शरीरपर नहीं रीझ गये हो .... तुमने मेरा हृदय, मेरी अन्तरात्मा को समझ लिया है, तो हाथ बढ़ाओ। तुम बाँसुरी बजाओगे। मैं चित्र बनाउँगी। मैं विधवा हूँ और तुमको भी विधुर होना पड़ेगा।''[11] इस प्रकार मनोरमा मानसिक रेखाओं के कारण अपने जीवन के प्रेम को आदर्श में बदल देना चाहती है। शारिरिक संबंधों की अपेक्षा अंतरात्मा के सम्बन्ध को महत्त्व देती है। वह वैधव्य का अनुभव इसलिए नहीं करती कि जो मिला नहीं उसके अभाव का दुःख क्या हो सकता है? चंद्रकला बीमार

है और उसकी बीमारी को मनोज नाटक समझ रहा है। मनोज स्वंय को आत्मघाती पिता का पुत्र मानता है। उसके पिताने आत्महत्या किस कारण से की वह जानने की वह सदैव कोशिश करता है। रजनीकांत की लाश जब मुरारीलाल के बंगले पर लायी जाती हैं तब चंद्रकला उस लाश को देखकर बेहोश हो जाती है। चंद्रकला रजनीकान्त का भोलापन, हँसी का कंपन देखकर ही उसपर रीझ गयी थी। इसलिए मनोज प्रेमाकर्षण को महत्त्व देता है। उसकी इस अवस्था को देखकर मुरारीलाल दुखी हो जाते हैं। उनकी इच्छा है कि चन्द्रकला और मनोज की शादी हो जाय इसलिए उन्होंने दस वर्ष तक उनके पिता की मृत्यू का राज छुपाकर रखा हुआ है और उसे अच्छी शिक्षा के लिए विलायत भेजा है। लेकिन दोनों एक दूसरे को बिल्कुल चाहते नहीं है। इस वजह से तो मुरारीलाल को मनोज और मनोरमा का संपर्क भी उन्हें नहीं सुहाता और उन दोनों पर शक करते रहते हैं। मनोज जब बारह साल का था तब मनोज के पिता ने आत्महत्या की थी। आत्महत्या करके अब दस साल हो गये हैं, अब मनोज की उम्र बाईस साल हो गयी है। इस दस वर्ष बीत जाने पर भी उन्होंने आत्महत्या क्यों की ? इसका पता नहीं लग जाता तो वह चिढ़ जाता है और कहता है कि - ''यह गुप्त बोझ मेरी आत्मा को दबाये रहेगा ..... इस जन्म में, दूसरे जन्म में, तीसरे जन्म में ।''[12] उसके मन में विचार आता है कि मुरारीलाल तो उसके घनिष्ठ मित्र थे। फिर भी उनकी आत्महत्या का रहस्य आज तक न बता सके, बल्कि उस पर एहसान करते रहे। फिर भी आत्महत्या का कारण न बताने के कारण वह उन पर चिढ़ता है और कहता है कि - ''तब तो शायद बाँसुरी की जगह मुझे पिस्तौल लेनी होगी।''[13] इसके उपरान्त चंद्रकला की तबीयत खराब हो जाती है। निष्कर्षतः डॉक्टर यहाँ तक पहुँच जाते है कि शायद उसके अब हृदय की धड़कन बन्द हो जायेगी। तब मनोज डॉक्टर की अपेक्षा चंद्रकला को ठीक करना चाहता है क्योंकि मनोज चंद्रकला की बीमारी का रहस्य जानता है और यह भी जानता है कि चंद्रकला का रोग शारीरिक नहीं मानसिक है। उसे दवा की नहीं, सहानुभूति और एकान्त की जरूरत है। वह कहता है, मनुष्य अपनी आदिम अवस्था में आज से कहीं अधिक स्वस्थ था। इसलिए कि तब डॉक्टर न थे। मनुष्य था शक्ति और जीवन का केन्द्र

प्रकृति थी। मनोज डॉक्टर से पूछता है कि चंद्रकला अब टहलने के लिए जा सकती है या नहीं तब डॉक्टरसाहब असमर्थता बताते हैं। फिर मनोज चंद्रकला के पास जाकर उसके समस्त विरोधों को मिटाते हुए प्राकृतिक वातावरण में घूमने का निवेदन करता है। तब चन्द्रकला तैयार होने के लिए जाती है और मनोरमा और मनोज का वार्तालाप प्रारंभ होता है। मनोरमा के मत से पुरूष के लिए प्रायश्चित करना पड़ता है स्त्री को। उसके व्दारा निर्मित रजनीकान्त के चित्र को वह अपनी कला का अंतिम अध्याय कहती है। उसका कहना है कि विधवा विवाह वैधव्य से नहीं मिटेगा, बल्कि तलाक की समस्या निर्माण होगी। वह उपभोग को सुख नहीं मानती बल्कि जीवनादर्श समझौता और सामंजस्य को मानती है। मनोरमा विधवा विवाह के विरूध्द है। वह जीवन का परमलक्ष्य त्याग को मानती है। वह कहती है कि - समाज की चेतना के लिए विधवाओं का होना आवश्यक है। जब मनोज अविवाहित रहकर मनोरमा के साथ रहना चाहता है तब मनोरमा अपने समाज की वास्तविकता बताती है और कहती है कि - ''शब्द तो बड़े सुन्दर है, लेकिन इसका मतलब क्या है? किसी विधवा के साथ अविवाहित पुरुष रह सकता है? साहित्य की कल्पना में तो यह सुन्दर शब्द है, लेकिन जीवन की वास्तविकता में यह बहुत ही भयंकर है।''[14] बाद में मनोज से चंद्रकला को क्षमा करने का निवेदन करती है और कहती है कि - ''तुम लोग लौटो नये जीवन और नयी आशा के साथ।''[15] मनोज और चन्द्रकला दोनों घूमने चले जाते हैं। मनोज और मनोरमा की यह सब बातें मुरारीलाल सुनते हैं और वह मनोरमा के इस कार्य की प्रशंसा करते हैं। बाद में मुरारीलाल मनोरमा को कई दिन रूकने के लिए कहते है लेकिन वह तैयार नहीं होती तब मनोरमा वहाँ से चली जाती है।

कुछ देर बार मुरारी बाबू मुन्शी माहिरअली को देखकर रजनीकान्त का समाचार पूछते है। उनका मन तो अपने कुकृत्यों पर टँगा हुआ है फिर शान्ति कैसे मिले ? माहिरअली मुरारीलाल को रजनीकान्त की बच जाने की सूचना देते हुए कहते हैं कि हरनन्दन सिंह ने चालीस हजार रुपये का प्रबंध कर लिया है। मुरारीलाल उस धन को प्राप्त करने का निर्णय करता है।

लेकिन माहिरअली इससे सहमत नहीं होता कि यह रुपया लिया जाय। इस प्रकार मुरारीलाल के इस निर्णय के साथ दूसरे अंक का अंत होता है।

तीसरा अंक :-

तीसरे अंक के प्रारंभ में माहिर का मानसिक धरातल पर्याप्त असंतुलित दिखाया गया है। अंधेरी रात में वह पागल-सा बड़बड़ाता है - ''आज की रात परलय है। किसी को बोलना नहीं चाहिए। बड़ा ड़रावना सपना देखा है। अभी-अभी दो काले आदमी शैतान की तरह खौफ़नाक, बड़े-बड़े बाल, लम्बे-लम्बे दाँत ओठ के बाहर, मेरा हाथ पकड़कर खींच रहे थे। जैसे इधर चारों तरफ भूत घूम रहे हैं।''[16] इस तरह मुन्शी माहिरअली बहुत ही घबरा हुआ है। मनोरमा उसकी आवाज सुनकर कुछ देर के लिए स्तब्ध रह जाती है। वह माहिर को शान्त होने के लिए कहती है - किन्तु उसका बड़बड़ना खतम् नहीं होता। फिर वह बरामदे में खम्भे के पास बैठता है; तब बाहर से चन्द्रकला और मनोज आते हैं। माहिरअली भगवन्तसिंह की चालीस हजार रूपये की बात मनोज को बताते है और यह भी बता देता है कि रजनीकान्त की हालत बहुत खराब है। यह सुनकर मनोज सन्न हो जाता है और चन्द्रकला भी घबरा जाती है। तब मनोज चन्द्रकला को समझाता है कि, ''शान्त रहो। सारा संसार मरता है। एक ओर मृत्यू हो रही है.... दूसरी ओर जन्म हो रहा है। यह कोई नयी बात नहीं है।''[17] मनोज माहिरअली कौनसा रहस्य जानता है यह जानने की कोशिश करता है। जब शृंगार वेश में चंद्रकला प्रवेश करती है। चन्द्रकला रजनीकान्त की हालत देख बहुत ही द्रवित हो उठती है और भावावेश में आकर उनकी बेहोशी की अवस्था में उनकी हाथों से अपनी मांग में सिन्दूर भरती है और अपने आपको सुहागन मानने लगती है। यही पर उन्होंने सिन्दूर की होली खेली है। मनोरमा के पूछने पर वह कहती है कि - ''मैं जिसकी थी उसकी हो चुकी और समझौता कैसा ? मनोज सब तरह से योग्य है; लेकिन उनके भीतर एक प्रकार का सन्देह, एक प्रकार का अन्धकार है, जो मैं समझ नहीं सकती। प्रयत्न हम दोनों नें भी किया लेकिन उसमें हम

दोनों असफल रहे।''[18] इस प्रकार चंद्रकला के पिता चाहते हुए भी वे एक दूसरे को पसंद नहीं करते हैं। फिर चंद्रकला कहती है कि प्रेम का राज्य असीम है। राम और सीता का, नल और दमयंती का, अज और इन्दुमती का प्रेम प्रथम दर्शन में ही हुआ था। स्त्री का हृदय सर्वत्र एक है; क्या पूर्व क्या पश्चिम; क्या देश क्या विदेश। मैंने जो कर दिया वही सच है। चंद्रकला ने वैधव्य को जान-बूझकर स्वीकार कर लिया है। तब चंद्रकला मनोरमा को कहती है कि, ''तुम्हारी मजबूरी पहले सामाजिक फिर मानसिक हुई, मेरी मजबूरी प्रारंभ में ही मानसिक हो गयी। तुम इस विचार में पड़ गयी हो कि मेरा निर्वाह कैसे होगा ? रोटी और कपड़े के प्रश्न को लेकर स्त्रीत्व की मर्यादा बिगड़ गयी। पुरुष की चार हाथ की सेज में ही हमारा संसार सीमित है। पुरुष ने स्त्री की कमजोरी को उसका गुण बना दिया और वह उसी प्रशंसा में सदैव के लिए आत्मसमर्पण कर बैठी। दूसरों की रक्षा में हम अपनी रक्षा नहीं कर सके।''[19] इस प्रकार चंद्रकला ने आत्मनिर्भर होकर जीवन बिताने का निर्णय ले लिया है। चंद्रकला अपने भीतर चिरन्तन नारीत्व का अनुभव करती है। सिन्दूर के बारे में जब मनोरमा चंद्रकला से पूछती है तो चंद्रकला कहती है कि - ''मेरा विवाह तो हो गया है। मैं अपने साथ सिन्दूर लेती गयी थी। पास में एक लालटेन रखी थी, कोई कम्पाउण्डर उठा ले गया। मुझे मौका मिल गया; उनके हाथ पर सिन्दूर रखकर मैंने लगा लिया।''[20] तब से वह अपने आपको सुहागन मानने लगी है और यही पर ही उन्होंने 'सिन्दूर की होली' खेली है। आगे कहती है कि ''यह मेरी सुहागरात है। कितनी सूनी ..... लेकिन कितनी व्यापक। इसका अंत नहीं है। मेरा पुरुष मुझे अपनी गुलामी में न रख सका .... मुझे सदैव के लिए स्वतंत्र कर दिया।''[21] इस प्रकार चन्द्रकला ने अपने सच्चे मन और सच्ची आत्मा से रजनीकान्त को अपने पति रूप में मान लिया है। वह कहती है कि समाज की मान्यता के अनुसार मेरा विवाह नहीं हुआ लेकिन मेरी दृष्टि से तो मेरा विवाह हो गया। इसी समय मुरारीलाल आकर चंद्रकला को अकेले अस्पताल जाने पर कोसते रहते हैं, बड़बड़ाते हैं। वे कहते हैं कि उस लड़के को ऐसी सहानुभूति दिखाकर मेरा मुँह तुमने काला कर दिया है। ऐसी बातें मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। उन्हें रजनीकान्त की मृत्यू का

दु:ख है। उन्हें इस बात की अत्यंत व्यथा है कि उन्होंने मारनेवालों का नाम नहीं बताया। रजनीकान्त ने कहा कि - "नाम बतलाना मैं नहीं चाहता। मेरे परिवार में केवल दो स्त्रियाँ हैं ..... कोई बच्चा नहीं है। मेरी परिवार की सारी आशाएँ मेरी साथ जा रही है। मैं नहीं चाहता कि दूसरों की आशाएँ भी अपने साथ लेता जाऊँ।"[22] इतना कहने के बाद उसकी मृत्यू हो गयी। मृत्यू के पूर्व और मृत्यू के बाद भी उसके मुख पर मुस्कान थी।

इसके बाद मनोज और माहिरअली प्रवेश करते हैं। माहिरअली ने मनोज के पिता की हत्या का रहस्य मनोज को बताया है। मनोज को अभी ज्ञात है कि उसके पिता का हत्यारा स्वयं मुरारीलाल है। केवल आठ हजार रूपये के लिए उसके पिता की हत्या की है यह भी वह जानता है। उन रूपयों से उन्होंने एक गाड़ी खरीद ली और एक बंगला बनवाया है। तब मुरारीलाल उस समय भी डिप्टी कलक्टर थे और माहिरअली उनका मुंशी। ये सब बातें जब मनोज मुरारीलाल को बताते हैं; तब उनके पैरों के नीचे की जमीन खिसक जाती है। मुरारीलाल इन सब बातों को स्वीकार कर लेता है। मनोज को इस बात में संतोष है कि उन्होंने यह सब स्वीकार कर लिया। तब वह कहता है कि , "मेरी आत्मा का बोझ उतर गया। अब मैं आत्मघाती पिता का पुत्र नहीं हूँ।"[23] यह सब जानकर मनोज का मन हलका होता है। मुरारीलाल प्रायश्चित के रूप में अपनी सारी संपत्ती मनोज को देना चाहते हैं। साथ ही अपनी बेटी चंद्रकला का हाथ भी उसे देने के लिए तैयार है। लेकिन मनोज इसे अस्वीकार करता है। चंद्रकला भगवन्त के पचास हजार रूपये को अपनी जिम्मेदारी मानती है। वह पिता से कहती है कि, "मैं तो सदैव आपके लिए प्रायश्चित करती रही हूँ। इनके बाप की हत्या आपसे हुई और उसका बदला लेते रहे मुझसे, बार-बार मुझे ठोकर मारकर। अस्पताल में मै गयी थी, जैसा कि आप देख रहे हैं। मेरे सिरपर पर यह सिन्दूर ..... उस पचार हजार का प्रायश्चित है। आपने मुझे पैदा किया था ..... मैं विश्वास करती हूँ मेरा कोई भी काम ऐसा नहीं हुआ है ..... जो कि आपके लिए अपमान की बात है।"[24] माहिरअली इतने वर्ष मन मे रखे हुंए बोझ को बताकर अपना मन हलका करते हैं। मनोज भी आत्मशांति का अनुभव करता है।

मनोरमा सामाजिक रेखाओं में आबध्द रहकर जीवन निर्वाह करने की इच्छा रखती है और चंद्रकला अपने पिता से अलग होकर अपने रास्ते के निर्माण में लग जाती है। नाटक के अंत में मुरारीलाल अकेले और असहाय हो जाते है और सब घर छोड़ने का निश्चय करते हैं।

इस तर संपूर्ण समस्याओं के हल में शांतिपूर्ण वातावरण में इस नाटक का अन्त होता है।

2.5 'सिन्दूर की होली' नाटक की कथावस्तु का अनुशीलन :-

प्रत्येक नाटक की कथावस्तु का स्रोत ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिस्थिति में प्राप्त होता है। नाटकों में कथावस्तु विविध रूपों में प्रस्तुत होती है। साहित्यसृष्टा सदैव महती अन्तर्दृष्टि, प्रभावात्मकता एवं व्यापक संवेदनशीलता की वरेण्य कसौटी पर कसकर ही विषय को चुनता है। ज्यों घटना जीवन के मर्म को घोषित कर उसमें प्राण ज्योति और गति का संचार करने में पूर्णतया सक्षम हो सके। वही कृति का रूप धारण कर सकती है। कथानक का चयन एवं उसका व्यवस्थित कलापूर्ण प्रस्तुतीकरण ही नाटककार की महानता के मानदण्ड है।

प्रस्तुत नाटक 'सिन्दूर की होली' के बारे में नाटककार की निजी राय में यह नाटक समस्यामूलक नाटक है और प्रयोग के धरातल पर वे इसे एक 'मॉडर्न एलिगरी' मानते हैं।

आलोच्य नाटक 'सिन्दूर की होली' में नाटककार ने मुरारीलाल का नैतिक पतन, रजनीकान्त की हत्या की सूचना, रिश्वतखोरी, मानसिक प्रवृत्तियाँ, सभी पात्रों के अंतर्द्वद्व का संघर्ष आदि दिखाने का प्रयास किया है।

सर्वप्रथम पट्टीदारों की समस्या है। यह समस्या पारिववारिक स्तर की है। इसमें धन का लोभ, अपनी बराबरी करता हुआ किसी को देखना सहन न करना, अपनी इच्छाओं का दास समझना, अधिक-से-अधिक आर्थिक साधन अपने हाथ में रखना आदि। रायसाहब भगवन्तसिंह इसी मोह में पड़ा हुआ एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है, जो अपने भतीजे रजनीकान्त के स्वतंत्र तर्कों एवं

क्रान्तिकारी विचारों को सहन नहीं करता। उसी कारण ही भगवन्तसिंह को अपनी इज़्ज़त बिगड़ी हुई दिखायी देती है। साथ ही संपत्ति के लालच में ही वह उसकी हत्या करवाना चाहता है।

कथावस्तु में नाटककार ने आज की न्याय की समस्या को उभारा है। भगवन्तसिंह रजनीकान्त की हत्या का साहस इसीलिए होता है कि आज पैसे देकर न्याय खरीदा जाता है। आज की न्यायप्रणाली सबूतों पर आधारित है। गवाह पैसे पर बिक जाते हैं। अधिकारी वर्ग पैसे लेकर पैसों की अवहेलना करते हैं। नाटककार ने इन घटनाओं एवं स्थिति को तर्क के साथ कलात्मक रीति से स्पष्ट किया है। नाटककार इन समस्याओं के पिछे छिपे व्यंग्य को दिखाना चाहता है। उसके साथ ही सेक्स, वैधव्य और विवाह की नयी मनोवैज्ञानिक समस्याओं का चित्रण भी करना चाहता है। सेक्स एवं वैधव्य की समस्या ही प्रस्तुत नाटक के कथानक में एक व्यापक समस्या बन गयी है।

यौन समस्याओं का बीजारोपण प्रथम अंक में प्राप्त मनोरमा और चंद्रकला के संवाद से स्पष्ट होता है।

'सिन्दूर की होली' कथानक का बीज, रजनीकान्त के प्रति चंद्रकला के मन में उत्पन्न हुई भावना में है। इसी कारण नाटक में यौन समस्या, वैधव्य, विवाह एवं स्त्री-पुरुष संबंध के सत्य को लेकर कई प्रश्न निर्माण होते हैं। रजनीकान्त को देखकर चंद्रकला के मन में पहली बार किसी पुरुष के प्रति यौनानुभूति जागृत होती है। मुरारीलाल मनोजशंकर से चंद्रकला का वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ना चाहता था। फिर भी पिता की इस इच्छा से अनभिज्ञ होते हुए भी चंद्रकला मरणशैय्या पर पड़े हुए रजनीकान्त के हाथ से अपनी माँग में सिन्दूर भर लेती है। इससे स्पष्ट होता है कि चंद्रकला उस पुरुष से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का आदर्श रखती है; जिसे उसका हृदय चाहता है। ऐसा करते समय पिता की सहमति या समाज की परवाह नहीं करती। वैसे देखा जाए तो प्रचलित वैवाहिक रूढ़ि के सन्दर्भ में यह एक रूढ़ि-विध्वंसक दृष्टि है। वास्तव में वह मनोजशंकर को हृदय से प्रेम नहीं करती थी। इसीलिए वह अपने पिता का विरोध करती हैं। इस संघर्ष में वह

अपने पिता के घर का त्याग भी करती है और स्वावलंबन के नये पथ पर चलना चाहती है। चंद्रकला के द्वारा नाटककार ने नारी स्वातंत्र्य की नयी बात छेड़ी है।

नाटककार विधवा विवाह की समस्या को उठाते हुए प्रस्तुत नाटक द्वारा कुछ विवादों को उत्पन्न करता है। जैसे चंद्रकला रजनीकान्त से प्रेम विवाह करके विधवा हो जाती है। उसी प्रकार मनोरमा भी एक विधवा हैं; जिसका विवाह अबोध बाल्यावस्था में हुआ था, उसका विवाह ऐसी आयु में हुआ था जब उसके हृदय में किसी पुरूष के प्रति आसक्ति नहीं थी। इसी कारण चंद्रकला मनोरमा के विवाह और वैधव्य की सार्थकता नहीं मानती। इसके विपरित मनोरमा चंद्रकला के वैधव्य को पुरूष के प्रति मोह का परिणाम मानती है। नाटक के तृतीय अंक में नाटककार ने प्रेमविवाह के बाद का वैधव्य और समाजानुमोदित विवाह के बाद का वैधव्य की सार्थकता पर तर्कवितर्क किया है। लेकिन नाटककार इस पर ठोस उपाय नहीं बताते। यह सवाल उन्होंने पाठकों पर तर्क वितर्क छोड़ दिया है।

नाटककार प्रेम विवाह के बारे में आज समाज में एक नयी समस्या का जिक्र करता है; वह है तलाक की समस्या। आज तक समाज में विधवा समस्या पर केवल चर्चा ही होती रहती है। बहुत से सुधारकों ने, नाटककारों ने, लेखकों ने विधवाओं के बहते हुए आँसू पर, विधवा विवाह के पुनर्विवाह पर सिर्फ लिखा है। विधवाओं का प्रश्न अभी भी बाकी है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक के कथानक में पाँच अर्थ प्रकृतियाँ, पांच अवस्थाएँ और संधियों का होना आवश्यक है। प्रस्तुत नाटक में सभी अवस्थाएँ मिल जाती है। नाटक के प्रारंभ की प्रस्तावना एवं अंत के आशीर्वचन के रूप में उपयोग न किया जाकर घटनाओं के बीच की टूटी हुई कड़ी को जोड़ने, चरित्रों की मनोदशा का पूर्वाभास देने, कलाक्षेपण की सूचना देने विभिन्न घटनाओं, प्रसंगों और चरित्रों की प्रतिक्रिया पर लेखकीय टिप्पणी देने के निमित्त किया गया है।

सारांश रुप में कहा जा सकता है कि कथावस्तु की सभी अवस्थाएँ प्रस्तुत नाटक में पूर्ण रूप से यहाँ नहीं मिलती। परंतु इनका पूर्ण अभाव भी नहीं मिलता है। स्थान-स्थान पर इन अवस्थाओं का सुंदर समायोजन दिखायी देता है।

कथावस्तु में मौलिकता एवं संक्षिप्तता के साथ ही रोचकता गुण भी है। इसमें पात्र संख्या सीमित है। वस्तु के प्रकार के अनुसार नाटक में मुख्य कथा के साथ कुछ अवान्तर घटनाओं का संयोजन किया है। मुख्य कथा के साथ कुछ सहायक कथाएँ भी चलती हैं। जिन्हें पताका और प्रकरी कहा गया है। कथावस्तु का प्रारंभ और अंत भी दुखान्त है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु में वस्तु के आधार, प्रकार तथा पूर्ण रूप में दिखायी देते हैं। घटनाओं का सुन्दर समायोजन किया है और उसके कारण कथावस्तु रोचक बन पड़ी है। रस एवं संघर्ष की योजना भी प्रस्तुत कथावस्तु में ठीक स्थान तथा समय होने के कारण उसमें प्रभावोत्पादकता एवं भावुकता भी तैयार हुई है। इन सभी के कारण 'सिन्दूर की होली' एक सफल नाटक है।

2.6 ''संन्यासी'' नाटक की कथावस्तु -

पहला अंक -

'संन्यासी' का प्रथम अंक कॉलेज के कमरे से शुरू होता है, जहाँ रमाशंकर मालती की ओर विशेष उन्मुख दृष्टिगत होता है और विश्वकान्त एवं मालती के सम्बन्ध में वार्तालाप का संकेत सुधाकर के संवादों में प्रकट हुआ है। यहाँ नाटक की समस्या की प्रस्तावना होती है क्योंकि जिस कथावस्तु पर 'संन्यासी' आधृत है, उसे यहाँ विवृत किया गया है ।

रमाशंकर, विश्वकान्त और मालती के कक्षा में प्रवेश करने पर विश्वकान्त को केवल एक प्रेम पूर्वाग्रह के कारण कक्षा से बाहर जाने के लिए कहते है। फिर भी विश्वकान्त मौन रहता

है कुछ बोलता नहीं है। तब मालती अपनी क्लास से उठकर चली जाती है। उसके बाद विश्वकान्त भी चला जाता है। मालती के प्रस्थान के उपरान्त क्लास में रमाशंकर का मन नहीं लगता और वे अपनी समस्त कथा को छोड़ देते हैं। कक्षा छोड़ने के उपरान्त विश्वकान्त अपनी उपस्थिति का प्रतिशत कम होने के भय से रमाशंकर से क्षमा माँगने के लिए जाता है। लेकिन वे उसे क्षमा नहीं करते। मालती विश्वकान्त की उसके इस कृत्य के लिए आलोचना करती है और कहती है कि वे मुझसे प्रेम करते हैं। इसी कारण मुझे तुम्हारे साथ देखकर जल उठे। इसी कारण ही वे तुम पर चिढ़ गये, बाकी कुछ कारण नहीं है।

प्रथम अंक में ही रमाशंकर और सुधाकर का वार्तालाप है। सुधाकर रमाशंकर के सम्मुख मालती और विश्वकान्त के प्रेम सम्बन्धों की चर्चा कर रमाशंकर की भावना को उद्दीप्त करता है। उस समय सुधाकर कहता है कि, ''विश्वकान्त चुपचाप खड़ा था और मालती उसके कन्धे पर हाथ रखकर ......''[25] इस प्रकार की बातें होते समय यह विदित होता है कि उन्हें दीनानाथ के विवाह का निमंत्रण पत्र आया है। सुधाकर और रमाशंकर दीनानाथ की भावी पत्नी के सम्बन्ध में बातें करते हैं और दोनों भी वहाँ से चले जाते हैं।

इस समय रंगमंच पर थोड़ी देर के लिए अंधेरा हो उठता है। प्रकाश होने पर विश्वकान्त के मकान का दृश्य सामने आता है। मालती विश्वकान्त के कमरे में प्रवेश करती है। दोनों बातें करते समय विश्वकान्त के पिता और मालती के पिता दोनों कमरे में प्रवेश करते हैं। ये दोनों आने से पहले विश्वकान्त मालती को बिस्तर पर छिपा देता है और उस तरफ कुछ छाया कर देता है। साथ ही घबराता हुआ उन दोनों के सामने खड़ा होता है। वे दोनों विश्वकान्त की तबीयत का हाल पूछते हैं। इसी बीच सुधाकर प्रवेश करता है। इस वक्त सुधाकर और विश्वकान्त के बीच थोड़ी सी बहस होती है और सुधाकर जान-बूझकर मालती के ऊपर ढकी हुई चादर निकालता है और उन दोनों का पोल खोल देता है। इस रहस्य का अनावरण भी कथानक के संघर्ष की ओर प्रेरित करता

है और विश्वकान्त के पिता क्रोधित होकर चले जाते हैं। साथ ही अपनी लाश तक न छूने की उन्हें कसम देते हैं। मालती के पिता भी मालती से विश्वकान्त से पुन: न मिलने की प्रतिज्ञा लेते हैं। इस घटना से एक निराशा का वातावरण मालती और विश्वकान्त के हृदय में परिव्याप्त हो जाता है और सामाजिक बंधन उनके वैयक्तिक संबंधों को नियमों से अनुशासित करते हैं।

मालती के प्रस्थान के उपरान्त विश्वकान्त निराशाजनक गीत गाता हुआ नज़र आता है और कहता है कि -

''क्या कहते हो व्यर्थ लाभ क्या ?
गिन कर नभ के तारे
अरे ! अबोध अचल यह रजनी
इनके मृदूल सहारे -
चलना होगा आज निकल कर,
कारागृह से अपने -
उस जगती को जहाँ जी उठेंगे,
चिर दिन के सपने ।''[26]

इस प्रकार गीत गाता हुआ विमनस्क अवस्था में था, तब मुरलीधर विश्वकान्त के कमरे में प्रवेश करते हैं। विश्वकान्त को निराश देखकर मुरलीधर विश्वकान्त को निराश जीवन को कर्म की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है और कहता है कि - ''रचना तुम्हारा धर्म है और रचयिता का धर्म है जीवन की लय में मिल जाना।''[27] मुरलीधर विश्वकान्त को जीवन की वास्तविक अनुभूति को अनुभूत करने की प्रेरणा देते हुए कहते है कि -''अपने जीवन की परिधि विस्तृत करो .... उसमें मुझे भी आने दो ..... दूसरों को आने दो ..... सारे समाज और सारे देश को आने दो।''[28]

इस प्रेरणा के उपरान्त विश्वकान्त कुछ आश्वस्त-सा दृष्टिगत होता है और वहाँ पर्दा गिरता है।

दूसरा दृश्य -

प्रथम अंक के दूसरे दृश्य में प्रोफेसर दीनानाथ और उनकी पत्नी किरणमयी का वार्तालाप है। उन दोनों के वार्तालाप से विदित होता है कि किरणमयी अभी नवयौवना है, किन्तु दीनानाथ वृध्द । वृध्द होने पर भी उनकी उपभोग की इच्छा चरमसीमा पर है। लेकिन दीनानाथ वृध्द होने के कारण किरणमयी उनसे ऊब गयी है। उसे उनके साथ रहना अच्छा नहीं लगता। दीनानाथ स्त्री को एक उपभोग का साधन मानते हैं और विवाह इसीलिये ही करते हैं, ऐसा उनका कहना है। इसी दृश्य में मालती और किरणमयी का वार्तालाप भी है। एक जगह किरणमयी मालती को बताती है कि संगीत के बिना स्त्री जीवन अधूरा है। इस वार्तालाप से यह झलक मिलती है कि वैवाहिक जीवन और कालेज के कोर्स में काफी अन्तर है। इसी दृश्य में रमाशंकर और मालती तथा किरणमयी और मालती के वार्तालाप से यह स्पष्ट है कि मालती रमाशंकर को घृणा की दृष्टि से देखती है। इसके उपरान्त यह दृश्य इस बात को भी प्रकाशित करता है कि किरणमयी और मुरलीधर के विवाहपूर्व सम्बन्ध है। किरणमयी मुरलीधर द्वारा प्रदत्त खादी का रूमाल सस्नेह स्वीकार कर लेती है और दीनानाथ से कटु वार्ता करती है। दीनानाथ की उपभोग वासना के प्रति उसके नारी की विरक्ति विध्वंसात्मक शब्दों में प्रकाशित होती हैं। बातें करते समय किरणमयी चिढ़कर दीनानाथ से कहती है कि - ''तुम दिन-रात में कोई दो घंटा इसके लिये नियत कर लो।''[29]

उसके इस विध्वंसात्मक एवं व्यंग्यात्मक संवाद के उपरान्त दीनानाथ उसके शरीर को स्पर्श न करने की प्रतिज्ञा करते हैं, उसका कारण यह है कि उन्हें देखकर किरणमयी को अपने पिता की याद आती है। इस शब्दों में व्यंग्य अपनी चरमसीमा का स्पर्श करता है।

तीसरा दृश्य :-

तीसरे दृश्य में मालती के मकान से सटा बगीचा है जहाँ उमानाथ और मुरलीधर वार्तालाप करते हैं। मुरलीधर स्वयं विवाह करने के लिए इच्छुक नहीं है और उमानाथ को यह संकेत देता है कि वह विश्वकान्त को भी विवाह करने की अनुमति नहीं देगा। इसके उपरान्त मोती द्वारा दिये पत्र को मालती फाडकर फेंक देती है जो मुरलीधर ने उसके पिता को भेजा था। इसी मध्य मालती और मोती में विवाद हो जाता है और मालती मोती को 'नौकर' कहती है। इस पर उमानाथ इस बात का संकेत देता है कि वह मोती को अपना लड़का ही मानता है। उमानाथ मालती से स्पष्ट कह देता है कि मोती का उतना ही अधिकार इस पर है जितना मालती का। वह मोती का अपमान किसी भी अवस्था में सहन नहीं कर सकता। इस बात से उमानाथ और मोती के विशेष सम्बन्धों के पूर्व संकेत नाटक में प्राप्त होते हैं। उमानाथ अपनी बेटी मालती का हाथ विश्वकान्त के हाथ देना चाहते हैं इसलिए विश्वकान्त को अपने घर बुलाता है। इसके पहले यह सब बातें मुरलीधर ने विश्वकान्त को पूछी थी। लेकिन विश्वकान्त का मन अब बदल गया है। वह शादी नहीं करना चाहता। वह अब देश की सेवा करना चाहता है, देश के लिए आत्मबलिदान देना चाहता है। विश्वकान्त इस आत्मत्याग की भावना के उपरान्त भी मालती से आंतरिक प्रेम करता है परन्तु उससे विलग होने का आत्मिक संबल उसमें नहीं है। केवल मुरलीधर को अपने विवाह न करने की शपथ देने के कारण वह मालती से विवाह करने में अपराध का अनुभव करता है। उसका हृदय निर्बल है। विश्वकान्त मालती को बहुत ही चाहता है उसके लिए पानी के बिना मछली जैसी तडपती है उसी प्रकार विश्वकान्त मालती के बिना तडपता है। फिर भी मालती विश्वकान्त को समझाती है और कहती है कि -''उसका सम्बन्ध तुम्हारी आत्मा से है। आत्मा के सुख के लिए शरीर का सुख छोड़ दो।''[30] इतना कुछ समझाने के बावजूद भी मालती का मोह उससे नहीं छूटतां। तब मालती उनके व्रतभंग की याद दिलाती है। उसी समय विश्वकान्त विमनस्क अवस्था

14143
A

में खिड़की पर अपना सिर रख देते हैं, तब मुरलीधर आते हैं और उसके सिर पर हाथ रख देते है। मुरलीधर विश्वकान्त को अतृप्त वासना के गर्भ में प्रवेश करने की अपेक्षा अपनी प्रतिभा का उपयोग कर असहयोग आन्दोलन में कार्य करने का परामर्श देता है। मोती भी विश्वकान्त के साथ सेवा करने की शपथ लेता है। इसी बीच रमाशंकर आकर मालती को सूचित करते है कि उसे सर्वात्तिम लेख के लिए पारितोषिक मिला है। यह बताते हुए मालती को अच्छी लगनेवाली पुस्तकों की सूची माँगकर रमाशंकर मालती के समक्ष अपने प्रेम को व्यक्त करते है। रमाशंकर इसके उपरान्त स्पष्ट शब्दों में अपनी प्यास की तृप्ति हेतु मालती को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है किन्तु इसी समय विश्वकान्त प्रवेश करता है और प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

दूसरा अंक :-

दूसरे अंक में विश्वकान्त को दो वर्ष के लिए कॉलेज से रिस्टीकेट किया जाता है क्योंकि विश्वकान्त का मालती को लिखा गया पत्र रमाशंकर चुपचाप मालती को बिना पूछे ले जाता है और इस रूप में प्रस्तुत कर देता है कि वह पत्र स्वयं मालती द्वारा रमाशंकर को दिया गया था। रमाशंकर और सुधाकर के वार्तालिप से यह बात स्पष्ट होती है कि रमाशंकर ने जान-बूझकर विशेष प्रयास कर उस पत्र को हस्तगत किया और अंत में विश्वकान्त को कालेज से निकलवा दिया। इसी कारण मालती रमाशंकर पर क्रोधित होती है। विश्वकान्त से मालती क्षमायाचना करती है और स्वयं को उसके सर्वनाश का उत्तरदायी स्वीकार करती है। दोनों एक दूसरे को बहुत चाहते हैं। मालती के अभिमत से विश्वकान्त का यह निष्कासन उन दोनों को अलग नहीं कर सकता। मालती और किरणमयी की बातों से यह बात विदित होती है कि रमाशंकर ने मालती के मेज पर से वह पत्र इसलिए उठाया था कि - रमाशंकर उससे प्रेम करता है। विश्वकान्त यह सब देखकर इस वातावरण से वह दूर रहना चाहता है। रमाशंकर के प्रवेश के समय वह मालती के समक्ष खड़ा रहना स्वीकार नहीं करता क्योंकि संघर्ष की क्षमता उसमें नहीं है। तब मालती विश्वकान्त से चिढ़कर कहती है

कि - "आप मुझे प्रेम करते हैं ..... जीवन की सर्दी ..... गर्मी में नहीं, पत्र में .... मेरे साथ यहाँ खड़े होकर उससे बात कर लेने में लज्जा लग रही है। इतना साहस भी नहीं।"[31] फिर वह रमाशंकर को खरी-खोटी सुनाती है। रमाशंकर से मालती अपने पत्र के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण चाहती है। वह रमाशंकर से स्पष्ट शब्दों में कहती है कि उसने प्रतिहिंसा के कारण ही यह कुकृत्य किया है। वह यह भी कह देती है कि उसके पास रमाशंकर के भी दो पत्र है और वह उन्हें प्रकाशित कर रमाशंकर की वासना को समाज के सम्मुख व्यक्त करने में संकोच नहीं करेगी। रमाशंकर भयभीत हो जाता है और दोनों रंगमंच से प्रस्थापन करते है। इसके उपरान्त मोती और विश्वकान्त का प्रवेश होता है। इतना कुछ होने के बावजूद भी विश्वकान्त जीवन से समझौता करना चाहता है क्योंकि उसके व्यक्तित्व में परिस्थितियों का सामना करने की दृढता नहीं है।

इसी अंक में दीनानाथ और किरणमयी का वार्तालाप है। इस वार्तालाप में किरणमयी और दीनानाथ के सम्बन्ध स्पष्ट हुए है। तदुपरान्त जब दीनानाथ किसी कार्य से शहर जाने के लिए प्रस्थान करते हैं, उस समय मुरलीधर और किरणमयी एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। किरणमयी अपनी अतृप्त वासना को तृप्त करने के लिए मुरलीधर की ओर आकृष्ट होती है किन्तु मुरलीधर किसी भी तरह संयमित रहकर अपने को इस कृत्य से बचाने का प्रयास करता है। इसी समय दीनानाथ प्रवेश करते हैं और उन्हें मुरलीधर और किरणमयी के सम्बन्धों का आभास होता है। किरणमयी दीनानाथ से स्पष्ट कहती है कि उन्होंने मुरलीधर के लिए खद्दर पहनी है। साथ ही वह यह भी कहती है कि मैं तुमसे प्यार नहीं करती, मेरा तुम्हारे साथ मन नहीं लगता और दीनानाथ से वह कितनी विरक्त हैं, यह उसके शब्दों और कार्यो से स्पष्ट होता है। वह स्पष्ट कहती है कि, "बेजोड़ चीजों का मिलना स्वाभाविक नहीं होता। मैं भी विधवा होती और मेरी अवस्था भी चालीस की होती, तो हम लोगों का विवाह स्वाभाविक होता।"[32] तात्पर्य यह है कि दीनानाथ और किरणमयी का वादविवाद इस चरम स्थिति तक पहुँच जाता है कि दीनानाथ इस बात को

स्वीकार कर लेता है कि वह दोनों मित्र बनकर रहें। स्वयं उनके शब्दों में - ''समझना किसी वेटिंगरूम में या होटल में दो आदमी ठहरें हैं ..... कभी कभी मन बहलाने के लिए दो आदमी ठहरे हैं ..... कभी कभी मन बहलाने के लिए यों ही बातें कर लिया करते हैं ..... बस यही इससे अधिक नहीं। अब मैं इस बात को बढ़ाना नहीं चाहता। रोज की चिन्ता, रोज की परेशानी .... मेरी तबीयत भी घबड़ा उठी है। तुमने ठीक कहा है। आओ, हम तुम मित्र बनकर रहें ...... स्त्री पुरुष नहीं।''[33] इस प्रकार दीनानाथ किरणमयी को समझाते हैं। इसके बाद विश्वकान्त और मुरलीधर का वार्तालाप है जिसमें देश और प्रेम की समस्याओं की मीमांसा है। मुरलीधर से विश्वकान्त यह स्पष्ट कह देता है कि मालती को पत्र लिखने के पश्चात भी वह देशसेवा की धुन सवार है और वह अपने दिल को संतुलित रखने का अत्यन्त प्रयास करता है। इसके बाद किरणमयी और मुरलीधर का वार्तालाप है जिसमें मुरलीधर किरणमयी को बहुत समझाते हैं और कहते हैं कि, ''प्रेम स्वर्ग है। उसमें वासना नहीं होती।''[34] लेकिन किरणमयी त्याग करना नहीं चाहती। वह तो अपने वासना की तृप्ति करना चाहती है क्योंकि उससे मुरलीधर का प्रथम प्रेम उसके लिए क्या वस्तु है? इस अनुभूति को केवल किरणमयी की आत्मा अनुभूत कर सकती है। वह मुरलीधर का कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं है। जब किरणमयी और मुरलीधर प्रेमस्थिति में होते हैं, उसी समय विश्वकान्त प्रवेश करता है। लेकिन उन दोनों को साथ देखकर लज्जित होकर चला जाता है। फिर मुरलीधर किरणमयी को समझाते हुए कहते हैं कि - ''जीवन तपस्या की वस्तु है।'' फिर विश्वकान्त के साथ एक अपरिचित-सा व्यक्ति आ जाता है। वह अपरिचित व्यक्ति सी.आई.डी. इन्स्पेक्टर था और वह मुरलीधर को पकड़ना चाहता है लेकिन मोती अपने को मुरलीधर के रूप में प्रस्तुत करता है। इसी अंक में यह भी स्पष्ट हो जाता है कि किरणमयी और मुरलीधर के प्रेम सम्बन्धों में मुरलीधर त्याग की भावना को स्थायी रखने के लिए कटिबध्द है, इतने में ही पुलिस प्रवेश करती है और सम्पादक को अपने पत्र में नौकरशाही और भावी क्रांति पर सम्पादकीय लिखने के अपराध में बंदी बनाना चाहता है किन्तु मुरलीधर स्वयं को सम्पादक घोषित कर बंदी बनाने का आग्रह करता है।

विश्वकान्त यह कह देता कि सम्पादकीय की रचना उसने की है, स्वयं को बन्दी बनाने जाने की प्रार्थना करता है। इसी विस्मय के वातावरण में पर्दा गिरता है और द्वितीय अंक समाप्त होता है।

तीसरा अंक :-

तीसरे अंक में सर्वप्रथम विश्वकान्त और अहमद का वार्तालाप है। इसमें सर्वप्रथम एशियाई संघ की स्थापना का आभास मिलता है, जिसका कार्यक्षेत्र अफगाणिस्तान है। अहमद एक अफगानी युवक है। अफगानी लोग सब विश्वकान्त को साथ देने के लिए तैयार है, इस संदर्भ में एक युवक अन्तरराष्ट्रीय स्थिति पर प्रकाश ड़ालता है। उसके मत से एशिया की एकता इसीलिये रह सकी कि ईसा के कुत्ते आपस में लड़ गये। इसमें एशिया की जागृति का आव्हान है। उनके शब्दों में - ''तुम्हारा सोने का अफगाणिस्तान, तुम्हारी सोने की एशिया। ईसा के भेड़िये हमको आदमी नहीं समझते हैं हम काले है, रंगीन हैं, हम शाइस्ता नहीं है।''[35] इस प्रकार अफगानी आदमी विश्वकान्त को पूरी तरह से सहयोग करने में तैयार है।

इस बातचीत के बाद विश्वकान्त को एक पत्र आता है। विश्वकान्त जब पत्र खोलकर देखता है तब वह चौंक जाता है। उसकी समझ में कुछ नहीं आता। विश्वकान्त की इस हालत को देखकर नसीर चौंक जाता है और उसे जाने के लिए कहता है। उसके बाद अहमद आता है और मेज़ के पास पड़ा हुआ पत्र उठाकर देखता है। फिर रख देता है। बाद में विश्वकान्त अहमद से पत्र पढ़वाता है। इस पत्र से विश्वकान्त के मन का अन्तर्द्वव्दबढ़ जाता है क्योंकि इस पत्र का सम्बन्ध मालती से है और मालती का विवाह निश्चित हो चुका है। जिसकी सूचना उसने विश्वकान्त को देकर उसके सम्बन्ध में राय माँगी है। तब अपनी सभी बातें अहमद से बताता है। विश्वकान्त अपने हाथों से पत्र लिखते समय भावनाविवश होकर अन्य बातें न लिख जाय इस भय से वह अहमद से पत्र लिखवाता है। विश्वकान्त को यह विश्वास है कि मालती हिन्दू लड़की होने के कारण वह समाज रूढ़ी, परंपराओं को ठुकरा नहीं देगी। लेकिन यह पत्र लिखने के पश्चात विश्वकान्त की

आँखों से आँसू गिरने लगते हैं। विश्वकान्त की यह अवस्था देखकर अहमद कहता है कि - ''तब हिन्दुस्थान लौट जाओ। इतनी कमज़ोर तबीयत के आदमी ...... क्या कर सकोगे।''[36] तब इसका कारण विश्वकान्त अहमद को बताता है। इस अन्तर्द्वन्द्व के उपरान्त मोती प्रवेश करता है। इधर-उधर की बातें होने के बाद मोती बताता है कि मुरलीधर को दो वर्ष कैद और दो हजार का जुर्माना हुआ है। इसके बाद मोती मुरलीधरजी का पत्र भी देता है। तब उन्हें पता चलता है कि मुरलीधरजी को यक्ष्मा हो गया है और उनकी तबियत बहुत ही खराब है। मोती इस बात का भी रहस्य खोल देता हैं कि मालती के पिता उमानाथ की अवैध सन्तान है और वे उनके पिता है। विश्वकान्त यह सुनकर चौंक जाता है और अपने जीवन के बारे में सबकुछ विश्वकान्त को बताता है। मोती के इस पश्चाताप पर विश्वकान्त उसे सांत्वना देकर इस बात की मीमांसा करता है कि मोती अपने पिता के पाप का फल है लेकिन उसके पिता ने मोती के प्रति अपने कर्तव्य का पूर्ण पालन किया है। यह भी बात बताता है कि अगर उन्होंने बुराई कर दी है तो उसके लिए उनकी जिन्दगी की भलाइयाँ नहीं मिटाय़ी जा सकती। यही नाटककार ने विश्वकान्त के ही माध्यम से समाज और प्रकृति के नियमों का अन्तर स्पष्ट किया है। मोती अब भारत जाना नहीं चाहता, वह अब विश्वकान्त के साथ ही रहना चाहता है। विश्वकान्त अपना एक पत्र देकर एक अफगानी युवक नसीर को मुरलीधर के पास भेजना चाहता है क्योंकि अपनी भावानुभूति के कारण वह ऐसा करने को बाध्य है। यहीं पर तीसरे अंक की समाप्ति हो जाती है।

चौथा अंक :-

चौथा अंक नाटक का अन्तिम अंक है जिसका प्रारंभ जेल के कमरे से होता है। जिस कमरे में मुरलीधर दिखाई देते हैं, उस कमरे में डिस्ट्रिक्ट मॅजिस्ट्रेट आ गये और उन दोनों का वार्तालाप है। डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मुरलीधर के साथ बहुत ही अच्छे पेश आते है इसका कारण मुरलीधर पूछते हैं तब वह बताते हैं कि - ''जिस कमरे में आप रखे गये थे; उसमें आपके आने के

पहले एक रोगी यक्ष्मा से मरा था। मुझे इसका पता नहीं था। मैंने आपको सजा दी थी मजबूर होकर।''[37] साथ ही वह यह भी बताते है कि भारतीय पदाधिकारियों में नैतिक बल का जो एकान्त भाव है वह हम में नहीं है। मुरलीधर को खाँसते हुए देखकर वह उनकी ओर सहानुभूतिसे देखते है। इसके बाद मुरलीधर भी इस बात पर प्रकाश ड़ालता है कि, ''साहित्यकार भी अपने युग का जीवन व्यतीत करता है। युग की समस्याओं की ओर जो नजर नहीं फेरता वह साहित्यकार विश्वकान्त एक साल तक मेरे साथ थे। मैंने उनके भीतर जो कवि था उसकी बार-बार अवहेलना की। देश और दुनिया की समस्याओं की ओर देखने को बाध्य किया। इस कारण उनके भीतर का कवि जो केवल सपना देखता था कुछ करता नहीं था ... मर गया। अब उनके भीतर रचयिता की सच्ची आत्मा का प्रवेश हुआ है। उनकी रचना कागज पर न होकर सर्वसाधारण की दुनिया में हो रही है। मुझे तो ठीक पता भी नहीं कि उन्होंने अभी कहाँ तक क्या किया है? तब मॅजिस्ट्रेट बताते है कि आन्दोलनों में उन्हें काफी सफलता मिली है। मुरलीधर उस भविष्य की कल्पना करते हैं जब एशिया अपनी आत्मरक्षा के लिए किसी संघ की रचना करेगा। मुरलीधर 'लीग आफ नेशन्स' को गोरी जातियों का संघ मानता है और यह भी स्पष्ट कर देता है कि जिस लेख के लिए उसे दण्ड मिला है उस लेख की रचना विश्वकान्त ने की थी। मुरलीधर की ये सब बातें सुनकर मैजिस्ट्रेट प्रभावित हो जाता है और कहता है कि मैं तो इस नौकरी से त्यागपत्र दे दूँगा क्योंकि नौकरशाही में नैतिकता का अत्यन्त अभाव होता है। इसी समय किरणमयी का प्रवेश करती है। और वह आपने आँचल से मुरलीधर के मुख से बहता हुआ खून पोंछती है। उसी समय मुरलीधर की मृत्यू हो जाती है। तब किरणमयी भी बेहोश हो जाती है। इसी समय दीनानाथ और रमाशंकर का प्रवेश होता है। दीनानाथ किरणमयी को वहाँ देखकर यह अनुभव करते हैं कि उन्हें किरणमयी के साथ विवाह नहीं करना चाहिए था। मुरलीधर का अपूर्व त्याग देखकर रमाशंकर का मन परिवर्तित हो जाता है। इसी समय मालती प्रवेश करती है। तब दीनानाथ उन्हें मुरलीधर के मृत्यू की बात बताते हैं और मालती भी उन्हें अपनी पिता के मृत्यू की बात बताती है और वह नितान्त अकेली है। पिता के मृत्यू

के कारण उसका विवाह रूक जाता है और वह रमाशंकर से विवाह का प्रस्ताव करती है क्योंकि उसका विवाह के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है और वह रमाशंकर से कहती है कि "मैं रोमान्टिक प्रेम नहीं चाहती - विश्वकान्त के साथ मेरा यही था। मैं वह प्रेम चाहती हूँ जो आजकल की दुनिया में समझदारी के साथ निबाहा जा सके।"[38] रमाशंकर और मालती के इसी वार्तालाप में मालती यह स्पष्ट कर देती है कि प्रेम और विवाह में स्पष्ट भेद है। यहीं नाटककार ने रोमानी और यथार्थवादी दृष्टिकोण के स्पष्ट भेद की ओर संकेत किया है। दोनों के वार्तालाप के पश्चात प्रेम की निशानी के रुप में रमाशंकर अपनी अँगूठी मालती के हाथ पहनाता है। इसके पश्चात किरणमयी और मालती बातें करती हुई दिखायी देती है। तब मालती कहती है कि वह रमाशंकर से विवाह करने के लिए जा रही है प्रेम करने नहीं। तब मालती किरणमयी को विवाह और प्रेम के अन्तर के बारे में बताती है और कहती है कि - "आपने प्रेम किया मुरलीधर जी से और विवाह किया दीनानाथ से।"[39] रमाशंकर को पसन्द करने के सम्बन्ध में उसका कथन है कि रमाशंकर से एक सामाजिक अनिवार्यता के कारण ही जिससे नारीत्व पुरुष की अहंमान्यता पर विजय प्राप्त करता है, उसने अपना सम्बन्ध स्थापित किया है किन्तु किरणमयी का दृष्टिकोण रोमानी है, वह प्रेम के आत्मिक संबंध को उसके सामाजिक सम्बन्ध से अधिक महत्वपूर्ण मानती है।

इसके बाद 'एशियाई संघ का भवन' दिखाई देता है। इसी समय विश्वकान्त और अहमद बातें करते हैं। तब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विश्वकान्त मालती को नहीं भूल सका है। इसी कारण और मुरलीधरजी के मृत्यु के कारण वह अब यह काम नहीं कर सकता। वह इस एशियाई संघ से मुक्ति चाहता है किन्तु इसका वास्तविक कारण अहमद स्पष्ट करता है कि एशियाई संघ से मुक्ति पाने की विश्वकान्त की भावना का आधार मालती द्वारा विश्वकान्त के प्रतिद्वन्द्वी से विवाह कर लेने के निश्चय परिणामस्वरुप है। विश्वकान्त एशियाई संघ के महामंत्री के पद से त्यागपत्र देना चाहता है। विश्वकान्त अपनी जिंदगी से ऊब गया है वह आत्महत्या करना चाहता है। तब अहमद उन्हें समझाता है। उसी वक्त मालती और मोती का प्रवेश होता है। मालती मोती

को लेने के लिए आग्री है लेकिन मोती यह बात स्वीकार नहीं करता। मालती एक बार विश्वकान्त से मिलना चाहती है। इसी समय विश्वकान्त प्रवेश करता है। मालती विश्वकान्त के रोमानी दृष्टिकोण पर आघात करती है क्योंकि उसका कहना है कि उन दोनों का प्रेम वासना पर आधारित था। आगे मालती विश्वकान्त को कहती है कि "मेरे लिए दुनिया न छोड़ो - यह कोई ऊँचा आदर्श नहीं होगा। अपनी रक्षा करो। तुम्हारी यह यात्रा दूसरों को प्रोत्साहित करे आगे बढ़ने के लिए। संसार में जन्म लेना, खाना, पीना, मर जाना यही जीवन है? जीवन तो वह चीज हैं जिसकी गति आँधी, तूफान, प्रेम, शोक, सुख, दुःख, मरण किसी के रोके न रूके।"[41] इसप्रकार मालती विश्वकान्त को समझाती हुई इस संसारी दुनिया के हटाना चाहती है। इससे विश्वकान्त का मन परिवर्तित हो जाता है और अपने जीवन के आदर्श की ओर दृढता से अग्रेसर होने का प्रयास करता है। इसी समय अहमद यह सूचना देता है कि विश्वकान्त संघ में काम करने को प्रस्तुत है लेकिन संन्यासी बनकर। अन्त में विश्वकान्त संन्यासी के वेश में आता है और मालती कहती है कि, "अब तुम मेरे देवता बन सकते हो ..... इस रुप में। मेरे शरीर की मुक्ति तो तुम से मिल गई, लेकिन मेरी आत्मा ? कौन जाने ......"[42] इतना कहते-कहते झुककर विश्वकान्त के पैर की धूल लेकर सिर पर लगाती है और इसके साथ ही नाटक समाप्त होता है।

2.7 "संन्यासी" नाटक का अनुशीलन :-

प्रत्येक नाटक की कथावस्तु के स्त्रोत या तो ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिवेशों में प्राप्त होते हैं या वे नाटककार की कल्पना से प्रसूत होते हैं अथवा दोनों का मिश्रण होता है।

'संन्यासी' मिश्रजी का पहला समस्या नाटक है। 'संन्यासी' की मूलकथा विश्वकान्त और मालती को लेकर चलती है। परन्तु मुरलीधर और किरणमयी की कथा भी उसके साथ जुड़ी हुई है। साथ ही बीच में दीनानाथ, रमाशंकर आदि की कथाएँ भी चलती हैं। इस नाटक का नायक अन्त में संन्यासी हो जाता है।

'संन्यासी' नाटक कुल चार अंकों में विभाजित है। नाटक का विश्वकान्त ही संन्यासी है जो अपने प्रेम से ऊपर उठने के लिए संन्यासी का रूप ग्रहण कर लेता है। एक प्रकार से यह मानव चेतना की विजय है; जो अध्यात्मिक अर्थ में भौतिक उपकरणों पर भारतीय संस्कृति की विजय का प्रतिक है।

'संन्यासी' नाटक के कथानक में सबसे पहले किरणमयी तथा मालती के प्रेम का चित्रण है। किरणमयी का प्रेम असफल मनोभावों पर, तो मालती का प्रेम बुध्दिवाद पर अवलंबित है। मालती का प्रेम विश्वकान्त के प्रति है। परन्तु प्रोफेसर रमाशंकर भी मालती को प्रेम की दृष्टि से देखते है। विश्वकान्त का चरित्र संघर्षों की कहानी होने के कारण वह मालती को आकर्षित करता है। इसी कारण प्रोफेसर रमाशंकर के मन में होनेवाला बुध्दिवाद उसे रमाशंकर से विवाह करने के लिए बाध्य करता है। तो किरणमयी वृध्द प्रोफेसर दीनानाथ से विवाह करके अपने पुराने प्रेमी मुरलीधर को अपनी अतृप्त वासना को शांत करने के लिए कहती है। अत: किरणमयी के विषम प्रेम में भारतीय वृध्द विवाह की समस्या पर नाटककार ने व्यंग्य किया है।

'संन्यासी' नाटक के कथानक में समस्या के तीन रूप है। प्रेम की समस्या, बुध्दिवादी दृष्टिकोण के माध्यम से प्रेम, सामाजिक विषमताओं के माध्यम से किया प्रेम इन प्रमुख तीन आधारों पर प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु बनायी गयी। पहला आधार मालती, रमाशंकर और विश्वकान्त के बीच में घूमता है; जिसमें मालती और विश्वकान्त का सम्बन्ध बुध्दिवादी समझोते के आधार पर मालती ने किया हुआ रमाशंकर से विवाह। नाटककार के मतानुसार भारतीय नारी के विवाह का प्रमुख आधार सामाजिक समझौता है।

दूसरा आधार है किरणमयी, दीनानाथ और मुरलीधर का त्रिभुज। जिसमें किरणमयी प्रोफेसर दीनानाथ से विवाह करके एक कृत्रिम अनुबंध स्थापित करती है और अपने प्रेमी मुरलीधर से अतृप्त वासनाओं की शान्त करने के लिए कहती है। यह उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की मनोवैज्ञानिक निर्मिती है।

'संन्यासी' नाटक का तीसरा आधार है - विश्वकान्त का जीवन। प्रथमत: मालती और विश्वकान्त का प्रेम है। जिसका कारण है विश्वकान्त का रोमानी व्यक्तित्व। परन्तु मालती में रोमान्टिक प्रतिस्थापनावादी दृष्टिकोण तथा बुध्दिवाद होने के कारण वह रमाशंकर से विवाह करके जीवन में समझौता करती है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु में मौलिकता, संक्षिप्तता एवं रोचकता दिखाई देती है। इसमें आयी अवान्तर घटनाएँ मुख्य कथा के साथ सुसंबद्ध है तथा कथानक का आदि, मध्य और अंत स्पष्ट और प्रभावशाली है। इसमें पात्रों की संख्या सीमित है। रस एवम् संघर्ष की स्थितियाँ भी प्रस्तुत कथानक में ठीक स्थान और समय पर हुई है। इन सभी के कारण एक सफल एवं सशक्त नाटक है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक के कथानक में पांच अर्थ प्रकृतियाँ पाँच अवस्थाएँ और पाँच संधियों का होना आवश्यक है। प्रस्तुत नाटक में यह सभी अवस्थाएँ मिल जाती है।

नाटक की कथावस्तु में स्थान-स्थान पर संघर्ष की स्थितियाँ निर्माण की है, जो नाटक की कथावस्तु में प्रभावोत्पादक बनाती है। संक्षेप में लक्ष्मीनारायण मिश्र द्वारा लिखित 'संन्यासी' यह एक सफल कृति है।

निष्कर्ष :-

'सिन्दूर की होली' की कथावस्तु बहुत सुगठित तथा व्यवस्थित है। इसमें तीन अंक है। तीनों अंकों में कथावस्तु विभाजन लगभग समान रुप से हुआ है। प्रथम अंक में रजनीकान्त की हत्या की आशंका है। उसकी जीवित लाश के मंच पर आने के साथ ही अंक समाप्त होता है। दूसरे अंक में रजनीकान्त की मृत्यू की संभावना है। इस परिस्थिती में मुरारीलाल चालीस हजार रुपये की घूस लेनेपर नाटक गंभीर बनता है। तीसरे अंक में चंद्रकला मृतप्राय रजनीकान्त के हाथ से माँग में सिन्दूर भरकर सिन्दूर की होली खेल लेती है।

'सिन्दूर की होली' अधिकारिक कथा मुरारीलाल के घूस लेने, रजनीकान्त के मारे जाने तथा उसकी लाश के हातों चंद्रकला के द्वारा अपनी माँग में सिन्दूर भर लेने की है। परन्तु इसके साथ ही अन्य प्रासंगिक कथाएँ भी बड़ी कलात्मकता के साथ जोड़ दी गयी है। ये प्रासंगिक कथाएँ अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए भी मूल कथानक से संबंधित है। जैसे मनोजशंकर और चंद्रकला, मुरारीलाल और मनोजशंकर के पिता, मनोजशंकर और मुरारीलाल आदि। ये सभी कथाएँ प्रमुख कथा को सहयोग देती हैं।

कथावस्तु का संगठन करते समय मिश्रजी ने कुछ समस्याएँ भी प्रस्तुत की है। उनमें नारी समस्या तथा कानून व्यवस्था की समस्या प्रमुख है। नारी समस्या के भी दो रुप - चिरंतन नारीत्व की समस्या और विधवा विवाह की समस्या। गौण समस्याओं के अंतर्गत जमींदारी पट्टीदारी तथा रोगोपचार की समस्या हैं। ये सभी समस्याएँ मूल कथानक के साथ संबंधित है। अत: यह कहा जा सकता है की 'सिन्दूर की होली' की कथावस्तु सुनियोजित तथा सुव्यवस्थित है। कथानक की घटनाएँ कथानक का विकास करती है और कथानक का प्रवाह स्वाभाविक और तर्कसंगत भी रखती है।

मिश्रजी के सामाजिक नाटकों में 'संन्यासी' का स्थान प्रथम है। इस नाटक में नायक विश्वकान्त अन्त में संन्यासी हो जाता है। 'संन्यासी' कथावस्तु के संगठन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण रचना है। 'संन्यासी' की मूल कथा विश्वकान्त और मालती को लेकर चलती है। परन्तु मुरलीधर और किरणमयी की कथा भी उसके साथ जुड़ी है। 'संन्यासी' में नाटककार ने अनेक समस्याओं का निर्माण किया है। इसमें प्रमुख तीन समस्याएँ हैं - 1) विवाह और प्रेम की समस्या, 2) देश के स्वातंत्र्य की समस्या, 3) एशियाई संघ की स्थापना की समस्या। नाटक में गौण रुप में भी कुछ समस्याएँ ली गयी है। जैसे - अनमेल विवाह तथा अवैध पुत्र की समस्या।

विवाह और प्रेम की समस्या को तीन-तीन पात्रों के दो त्रिकोणों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। पहले त्रिकोण में मालती, विश्वकान्त और रमाशंकर है। तो दूसरे त्रिकोण में किरणमयी, मुरलीधर तथा दीनानाथ है। नाटक में प्रेम और विवाह की समस्या को दो समान्तर कथानकों के माध्यम से शुरु किया और अंत में एक बिन्दु पर उनका समन्वय स्थापित किया है। वह समन्वय है - व्यक्ति का समाज के लिए बलिदान। चाहे कुछ भी हो परन्तु समाज की व्यवस्था में कठिनता नहीं आनी चाहिए, इसका ख्याल नाटककार ने रखा है।

देश की स्वतंत्रता तथा एशियाई संघ की स्थापना की समस्या भी नाटककार ने स्पष्ट की है। इस समस्या को हल करते है - मुरलीधर, विश्वकान्त तथा अहमद। इसके साथ ही नाटककार ने सहशिक्षा, अनमेल विवाह, अवैध संतान आदि की समस्याओं को भी उठाया है। परन्तु इन समस्याओं के कारण ही कथानक के संगठन को भारी नुकसान पहुँचा है। नाटक को प्रभावान्विति की दृष्टि से देखा जाय तो नाटककार ने कथानक में अनेक समस्याओं को उपस्थित करके कथावस्तु में अनेक भद्दे जोड लगाकर नाटक की प्रभावात्मकता को भी कम कर दिया है।

इस प्रकार संन्यासी की कथावस्तु का उद्देश भारतीयता का पोषण, उत्सर्ग और त्याग के प्रति जनरुचि जगाना तथा कर्तव्य के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर देने की प्रेरणा देना है।

संदर्भ सूची

1. भरतमूनि, नाट्यशास्त्र, पृ.84, 85

2. भरतमूनि, नाट्यशास्त्र, पृ.10

3. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ. 28

4. वही, पृ. 32

5. वही, पृ.50

6. वही, पृ.50

7. वही, पृ.51

8. वही, पृ.51

9. वही, पृ.51

10. वही, पृ.54

11. वही, पृ.55

12. वही, पृ.63

13. वही, पृ.64

14. वही, पृ.83

15. वही, पृ.85

16. वही, पृ.90

17. वही, पृ.95

18. वही, पृ.99

19. वही, पृ.102

20. वही, पृ.105

21. वही, पृ.104

22. वही, पृ.116

23. वही, पृ.118

24. वही, पृ.120

25. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ.27

26. वही, पृ.39

27. वही, पृ.41

28. वही, पृ.43

29. वही, पृ.54

30. वही, पृ.71

31. वही, पृ.90

32. वही, पृ.107, 108

33. वही, पृ.112

34. वही, पृ.121

35. वही, पृ.137

36. वही, पृ.144

37. वही, पृ.153

38. वही, पृ.166

39. वही, पृ.168, 169

40. वही, पृ.180

41. वही, पृ.183

42. वही, पृ.183